स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक चिंतन

दिनेश कुमार गुप्ता*
साजिदा सादिक**

स्वामी विवेकानंद एक महान दार्शनिक थे और एक दार्शनिक होने के नाते उन्होंने अपने दर्शन के अनुकूल शैक्षिक विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने अपने काल की शिक्षा का विरोध किया और उसे निषेधात्मक व भावात्मक बताया। उनका मानना था कि विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा मनुष्य बनाने वाली शिक्षा नहीं है, वह केवल जानकारियों का ढेर देती है जो आत्मसात हुए बिना मस्तिष्क में पड़ा रहता है। उन्होंने कहा कि हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक विकास बढ़े, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो तथा जो भावों और विचारों को आत्मसात कराए। इस प्रकार वे सैद्धांतिक शिक्षा का विरोध और व्यावहारिक शिक्षा का समर्थन करते थे। वे जीवन के रहस्य को मौन रूप में स्वीकार नहीं करते वरन् अनुभव द्वारा शिक्षा ग्रहण करने को ही जीवन का रहस्य मानते हैं। स्वामी जी मनुष्य में पाई जाने वाली ईश्वरीय पूर्णता पर अत्यधिक विश्वास करते हैं जो कि हमारे भीतर चिरकाल से विद्यमान है। स्वामी जी ने आधुनिक भारतीय परिस्थितियों का पूर्वाभास पा लिया था और जो समन्वयकारी दृष्टिकोण उन्होंने प्रस्तुत किया, उसमें से बहुत कुछ आज की परिस्थिति में ग्रहणीय है। स्वामी विवेकानंद ने वेदांत दर्शन की पुनर्व्याख्या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में की तथा निराशा एवं कुंठा के दलदल में फँसी हुई भारतीय जनता को जीवन का नवीन पथ दिखाया।

भूमिका

स्वामी विवेकानंद भारत के एक महान दार्शनिक, समाज सुधारक और आध्यात्मिक नेता व शिक्षा चिंतक हुए हैं। उन्होंने वेदांत, आध्यात्मिक तथा भगवान के साक्षात्कार के लिए बहुत अध्ययन और साधना की थी। वे बंगाल के प्रसिद्ध आध्यात्मिक

* *शोधार्थी,* शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
** *प्राचार्या,* एम.के.बी. महिला बी.एड. महाविद्यालय, जयपुर

Chapter 9.indd 80 03-08-2017 16:15:15

संत श्री रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य थे। उन्होंने रामकृष्ण परमहंस के निर्वाण के पश्चात् संन्यास धारण कर लिया था तथा अमेरिका और इंग्लैण्ड में भी आध्यात्मिक भाषण दिए। श्री रामकृष्ण परमहंस के मुख्य शिष्य के नाते उन्होंने अपने जीवन में किसी प्रकार की संकुचित भावना को स्थान नहीं दिया। वे मानव मात्र में ईश्वर की उपस्थिति मानते थे। स्वामी विवेकानंद का जीवन दर्शन भारतीय दर्शन के वेदांत से अभिप्रेरित है। वेदांत दर्शन आत्मतत्व पर बल देता है। स्वामी जी के शब्दों में — *जब हम दर्शन का अध्ययन करते हैं तब हमें यह ज्ञान होता है कि संपूर्ण विश्व एक है। आध्यात्मिक, भौतिक, मानसिक तथा प्राण जगत से भिन्न-भिन्न नहीं है। समस्त विश्व यहाँ से वहाँ एक है, बात इतनी ही है कि अलग-अलग दृष्टिकोण से देखे जाने के कारण वह भिन्न प्रतीत होता है।* (रूहेला, एस.पी. 2015. पृ. 226)

शिक्षा का अर्थ

स्वामी जी शिक्षा के द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं परलौकिक दोनों जीवनों के लिए तैयार करना चाहते थे। इनका विश्वास था कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से संपन्न एवं सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग ये सब कल्पना की वस्तु हैं। श्री विवेकानंद के 'नव्य वेदांत' में कहा गया है — *शिक्षा द्वारा मनुष्य का निर्माण किया जाता है। समस्त अध्ययनों का अंतिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है। जिस मनुष्य द्वारा मनुष्य की संकल्प शक्ति का प्रवाह संयमित होकर प्रभावोत्पादक बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 221)। शिक्षा को विवेकानंद 'मनुष्य के निमाण की शिक्षा' मानते थे। परंतु मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य अपने अंदर छिपी आत्मा (पूर्णता) की अनुभूति ही मानते थे। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा को मात्र सूचना तक सीमित नहीं करना चाहिए। जो विचार जीवन निर्माण में सहायक हों, उनकी अनुभूति करना आवश्यक है। उनके अनुसार केवल कुछ विचारों को रटकर डिग्री प्राप्त कर लेना शिक्षा नहीं है। स्वामी जी के शब्दों में – *यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रंथालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े संत हो जाते और विश्वकोष के महान ऋषि बन जाते।* (पाण्डेय, रामशकल. 2008. पृ. 216)

लौकिक व आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान मानव मन में निहित रहता है। जब धीरे-धीरे आवरण हटता है तो कहा जाता है व्यक्ति सीख रहा है। जिसके मन से आवरण पूर्णतः हट जाता है उसे सर्वज्ञ कहा जाता है। स्वामी जी के शब्दों में – *तुम किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार समर्थ हो, जैसे कि किसी पौधे को बढ़ाने में। पौधा अपना विकास आप ही कर लेता है। बालक भी अपने आपको शिक्षित करता है। समस्त ज्ञान मनुष्य के अंतर में अव्यवस्थित है, उसे केवल जागृति, प्रबोधन की आवश्यकता है और बस इतना ही करना है कि वे अपने हाथ, पैर, कान और आँखों के उचित उपयोग के लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करना सीखें।* (पाण्डेय, रामशकल, 2008, पृ0 217)

शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी विवेकानंद के अनुसार हमारी शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि हमारी इच्छा शक्ति सबल बने और उसके माध्यम से हम चरित्र का उन्नयन कर सकें। शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना नहीं होना चाहिए। नौकरी को शिक्षा का उद्देश्य मानने वाले छात्रों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं – *तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? या तो मुंशीगीरी मिलना, वकील हो जाना, या अधिक से अधिक डिप्टी मजिस्ट्रेट बन जाना, जो मुंशीगीरी का ही दूसरा रूप है – बस यही न? इससे तुमको या तुम्हारे देश को क्या लाभ होगा? आँखे खोलकर देखो, जो भारतखंड अन्न का अक्षय भंडार रहा है, आज वही उसी अन्न के लिए कैसी करुण पुकार उठ रही है। क्या तुम्हारी शिक्षा इस अभाव की पूर्ति करेगी? वह शिक्षा जो जन समुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती, जो उनकी चारित्र्य शक्ति का विकास नहीं करती, जो उनमें दया का भाव व सिंह का साहस पैदा नहीं करती, क्या उसे भी हम शिक्षा का नाम दे सकते हैं?* (पाण्डेय, रामशकल. 2008. पृ. 219)।

स्वामी विवेकानंद मनुष्य के भौतिक व आध्यात्मिक दोनों रूपों को वास्तविक मानते थे, सत्य मानते थे। इसलिए मनुष्य के दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। जो शिक्षा ये दोनों कार्य करे उसे ये पूर्ण शिक्षा कहते थे। इस हेतु स्वामी जी ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों पर बल दिया है उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध कर सकते हैं –

शारीरिक विकास – पूर्णता की प्राप्ति के लिए है – शारीरिक स्वास्थ्य। वे लिखते हैं – *सबसे पहले हमारे युवकों को सबल बनना चाहिए। धर्म तो बाद की चीज़ है। तुम गीता पढ़ने की बजाय फुटबाल खेलकर स्वर्ग के अधिक निकट पहुँच सकते हो। यदि तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, अपने पैरों पर दृढ़तापूर्वक खड़ा हो सकता है, यदि तुम अपने भीतर मानव शक्ति का अनुभव कर सकते हो, तो तुम उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को अधिक अच्छी प्रकार समझ सकते हो।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 221-222) भौतिक दृष्टि से इन्होंने कहा कि इस समय हमें ऐसे बलिष्ठ लोगों की आवश्यकता है जिनकी माँसपेशियाँ लोहे के समान दृढ़ हों और स्नायु फौलाद की तरह कठोर हों।

मानसिक व बौद्धिक विकास – स्वामी जी ने भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उसके बौद्धिक पिछड़ेपन को बताया और इस पर बल दिया कि हमें अपने बच्चों का मानसिक व बौद्धिक विकास करना चाहिए और इसके लिए उन्हें आधुनिक संसार के ज्ञान विकास से परिचित कराना चाहिए।

मनुष्य का निर्माण करना – स्वामी जी के अनुसार सभी प्रकार की शिक्षा व अभ्यास का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण है। सारे प्रशिक्षणों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना है। जिस अभ्यास से मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रवाह व प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके उसी का नाम शिक्षा है।

जीवन संघर्ष के लिए तैयारी – जीवन संघर्ष की तैयारी के लिए तकनीकी व विज्ञान की शिक्षा आवश्यक है। स्वामी जी के अनुसार जो कोई प्रकृति के विरुद्ध लड़ता है, उसमें ही चैतन्य का विकास है।

जहाँ चेष्टा या पुरुषार्थ है, वहीं जीवन का चिह्न है और चेतना का प्रकाश है। उनके अनुसार – *तत्कालीन शिक्षा मनुष्य में सिर्फ बाहरी परिवर्तन उत्पन्न करती है, परंतु मनुष्य को आजीविका उपार्जन करने में अशक्त कर देती है। जीवन संघर्ष की तैयारी का प्रतिफल उत्पादन के रूप में प्रस्फुटित होना चाहिए।* (ओड, एल.के. 2010. पृ.222)

राष्ट्रीयता व अंतर्राष्ट्रीयता का विकास – स्वामी जी राष्ट्रीयता व अंतर्राष्ट्रीयता के बीच विरोधाभास नहीं देखते। नव्य वेदांत के अनुसार संपूर्ण मानवता में एकत्व विद्यमान है, परंतु उसका विकास क्रमशः होता है। अंतर्राष्ट्रीय भावों का विकास सुदृढ़ राष्ट्रीय गौरव के धरातल पर ही हो सकता है। उनके शब्दों में – *प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी, बुढ़ापे की काशी है।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 222)

चरित्र विकास – स्वामी जी ने यह बात अनुभव की कि शरीर से स्वस्थ, बुद्धि से विकसित व अर्थ से संपन्न होने के साथ-साथ मनुष्य को चरित्रवान भी होना चाहिए। चरित्र ही मनुष्य को सत्यनिष्ठ बनाता है, कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। अतः इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के नैतिक व चारित्रिक विकास पर बल दिया।

धार्मिक विकास – स्वामी जी ने मन तथा हृदय के प्रशिक्षण पर बल दिया और बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा बालक में आज्ञापालन, समाज सेवा व महात्माओं के अनुकरणीय आदर्शों को अपनाने की क्षमता का विकास हो सके।

शैक्षिक पाठ्यक्रम – स्वामी विवेकानंद के अनुसार– *हमें अपने ज्ञान के विभिन्न अंगों के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करने की आवश्यकता है। हमें प्राविधिक शिक्षा और उन सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है, जिनसे हमारे देश के उद्योगों का विकास हो और मनुष्य नौकरियाँ खोजने के बजाय अपने स्वयं के लिए पर्याप्त धन का अर्जन कर सके और दुर्दिन के लिए कुछ बचा भी सके।* (शर्मा, आर.ए. 2010. पृ. 525)

स्वामी जी ने उन सभी विषयों के अध्ययन पर बल दिया जो मनुष्य की सांसारिक समृद्धि व आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। लौकिक विषय – भाषा, विज्ञान, मनोविज्ञान, गृहविज्ञान; प्राविधिक विषय – कृषि; व्यावसायिक विषय; इतिहास, भूगोल, कला, गणित, राजनीति, व्यायाम, राष्ट्र सेवा; आध्यात्मिक विषय-दर्शन, पुराण, धर्म, कीर्तन, श्रवण व साधु संगति।

शिक्षण विधि – स्वामी विवेकानंद ने एकाग्रता को ज्ञान प्राप्त करने की एकमात्र विधि माना है। उनके अनुसार – *ज्ञान प्राप्त करने की सबसे उत्तम विधि एकाग्रता है। मन की एकाग्रता में शिक्षा का सार है। ज्ञानार्जन के लिए निम्नतम श्रेणी के मनुष्य से लेकर उच्चतम योगी तक को इस विधि का अवलंबन करना पड़ता है।* (शर्मा, आर.ए. 2010. पृ. 525) उन्होंने कहानियाँ सुनना, भ्रमण करना, विचार-विमर्श करना, धर्मोपदेश सुनना आवश्यक बताया। उन्होंने अनुकरण को उपयोगी बताया। अनुकरण विधि द्वारा चारित्रिक व आध्यात्मिक विकास संभव है। उन्होंने

बालकों को उचित मार्ग पर अग्रसर करने के लिए परामर्श व व्यक्तिगत निर्देशन विधि का भी समर्थन किया।

अनुशासन – यद्यपि विवेकानंद जी आदर्शवादी थे, परंतु उनके अनुशासन संबंधी विचार प्रकृतिवादी से मिलते-जुलते हैं। वे बालक को किसी प्रकार का शारीरिक दंड या उस पर अनुचित दबाव डालने के विरोधी थे। स्वतंत्रता सीखने की प्रथम सामग्री है, इसलिए बालकों को सीखने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता देनी चाहिए।

स्वामी जी शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों को आत्मानुशासन का उपदेश देते थे। उनका मत था कि जब शिक्षक शिक्षार्थियों के सामने आत्मानुशासन का उच्च आदर्श प्रस्तुत करेंगे तो बालक भी उनका अनुकरण करेंगे और फिर धीरे-धीरे वैसा सोचने और करने की उन्हें अंदर से प्रेरणा मिलने लगेगी तथा वे स्वानुशासन की ओर बढ़ेंगे।

शिक्षक संकल्पना – स्वामी जी गुरुकुल प्रणाली के समर्थक थे। शिक्षकों को भौतिक व आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे बालकों को लौकिक व पारलौकिक दोनों जीवन के लिए तैयार कर सकें। स्वामी जी का दृढ़ विश्वास है कि चरित्रवान गुरु के आदर्श जीवन के अनुकरण द्वारा ही बालक का अंत:सुप्त देवत्व जाग्रत किया जा सकता है। वे लिखते हैं – *यदि देश के बालकों की शिक्षा का भार फिर से त्यागी और निःस्पृह व्यक्तियों के कंधों पर नहीं आता, तो भारत को दूसरों की पादुकाओं को सदा के लिए अपने सिर पर ढोते रहना होगा।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 224) वे शिक्षकों से यह आशा करते थे कि वे मनोविज्ञान की सहायता से बालकों की कर्मजनित भिन्नता को समझकर उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करें। इस प्रकार स्वामीजी शिक्षक के प्राचीन और अर्वाचीन दोनों स्वरूपों के समर्थक थे।

शिक्षार्थी संकल्पना – स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने की प्रथम शर्त है कि विद्यार्थी के हृदय में शिक्षक के प्रति श्रद्धा का भाव हो। उन्होंने कहा – *शिक्षक के प्रति श्रद्धा, विनम्रता, समर्पण तथा सम्मान की भावना के बिना हमारे जीवन में कोई विकास नहीं हो सकता। उन देशों में जहाँ शिक्षक-शिक्षार्थी संबंधों में उपेक्षा बरती गई है, वहाँ शिक्षक एक व्याख्याता मात्र रह गया है। वहाँ शिक्षक अपने लिए पाँच डॉलर की आशा रखने वाले और छात्र, शिक्षक के व्याख्यान को अपने मस्तिष्क में भरने वाले रह जाते हैं। इतना कार्य संपन्न होने पर दोनों अपनी-अपनी राह पर चल देते हैं। इससे अधिक उनमें कोई संबंध नहीं रह गया है।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 223-224)

स्वामी विवेकानंद विद्यार्थी अवस्था में ब्रह्मचर्य पालन पर जोर देते हैं। उनके मतानुसार इस अवस्था में बालकों को मन, वाणी व कर्म से ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए। इससे संकल्प शक्ति दृढ़ होती है, आध्यात्मिक शक्ति का उदय होता है, सूक्ष्म तत्वों को समझने व हृदयंगम करने की मेधा उत्पन्न होती है तथा वाग्मिता आदि शक्तियों का विकास होता है। शिक्षार्थी में शुद्धता, विचार, वाणी व कर्म की पवित्रता होनी चाहिए। उसमें ज्ञान की पिपासा होनी चाहिए। छात्र में लगन के साथ परिश्रम करने की

इच्छा व शक्ति होनी चाहिए। छात्र में जिज्ञासा ही वह मूल चाह है जिससे वह ज्ञान प्राप्त करता है। शिक्षक के हृदय में उच्च आदर्शों के लिए व्याकुलता होनी चाहिए।

विद्यालय संकल्पना – विवेकानंद गुरु गृह प्रणाली के पक्षधर थे। वे यह अनुभव करते थे कि आधुनिक परिस्थितियों में विद्यालय प्रकृति की गोद में, शहर के कोलाहल से दूर नहीं बसाये जा सकते। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि विद्यालय का पर्यावरण शुद्ध होना चाहिए और वहाँ अध्ययन-अध्यापन, खेलकूद, व्यायाम के अतिरिक्त भजन कीर्तन एवं ध्यान की क्रियाएँ भी संपन्न करायी जाएँ। स्वामी जी के शब्दों में – *मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है गुरुकुल वास। शिक्षक के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा हो ही नहीं सकती। जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो, ऐसे व्यक्ति के सहवास में शिष्य को बाल्यावस्था के आरंभ से ही रहना चाहिए, जिससे कि उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे। हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता रहा है।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 224)

शिक्षा के अन्य पक्ष

जन शिक्षा – स्वामी जी जन शिक्षा पर अत्यधिक बल देते थे। उनका विचार है कि यदि गरीब बालक शिक्षा लेने नहीं आ सकता है तो शिक्षा को उनके पास पहुँचाना चाहिए। जनसाधारण को व्यावहारिक शिक्षा दी जानी चाहिए। उन्हें कृषि की शिक्षा मिलनी चाहिए, क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है और कृषि की उन्नति पर ही देश की उन्नति निर्भर है। जीवन के लिए आवश्यक विषयों की शिक्षा प्रदान करना समाज का कर्तव्य है। वाणिज्य व्यापार शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

स्त्री शिक्षा – स्वामी जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति सचेत थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज को शिक्षित नहीं कर सकते और जब तक समाज को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज या राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते। वे स्त्रियों को आदर्श गृहिणी, आदर्श माताएँ, आदर्श शिक्षिकाएँ व समाज सुधारक बनाना चाहते थे। वे नारियों के लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे जिसके द्वारा ऐसी नारियों का निर्माण हो जो पवित्र हों, निर्भय हों, गृहस्थ धर्म के निर्वाह में निपुण हों, वीर पुत्रों को जन्म दें और समाज को उचित दिशा दें। स्त्रियों को शिक्षा कार्य भी अपने हाथ में लेना चाहिए। स्वामी जी कहते हैं– *सुशिक्षिता और सच्चरित्रवती ब्रह्मचारिणियाँ शिक्षा कार्य का भार अपने ऊपर लें। ग्रामों और शहरों में केंद्र खोलकर स्त्री शिक्षा के प्रचार का प्रयत्न करें। ऐसी सच्चरित्र निष्ठावान उपदेशिकाओं के द्वारा देश में स्त्री शिक्षा का यथार्थ प्रचार होगा। इतिहास और पुराण, गृह व्यवस्था और कला कौशल, गृहस्थ जीवन के कर्तव्य और चरित्र गठन के सिद्धांतों की शिक्षा देनी होगी। और दूसरे विषय जैसे सीना-पिरोना, गृहकार्य, नियम, शिशुपालन आदि भी सिखाये जाएँगे। जप, पूजा व ध्यान शिक्षा के अनिवार्य अंग होंगे। दूसरे गुणों के साथ उन्हें शूरता और वीरता के भाव भी प्राप्त करने होंगे।* (पाण्डेय, रामशकल. 2008. पृ. 225)

सह शिक्षा – स्वामी जी सह शिक्षा के विरोधी थे। वे मानते थे कि स्त्री–पुरुषों की शिक्षा की पाठ्यचर्या समान नहीं होती इसलिए उन्हें साथ-साथ कैसे पढ़ाया जा सकता है। सह शिक्षा आत्म संयम में बाधक होती है। वे लड़कियों के लिए अलग विद्यालयों की स्थापना करने और उनमें केवल स्त्री शिक्षिकाओं की नियुक्ति करने के पक्ष में थे।

राष्ट्रीय शिक्षा

स्वामी जी के विचारों में शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के उत्थान के लिए मूलभूत आवश्यकता है। अतः किसी भी राष्ट्र को अपने नागरिकों की उचित शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। उन्होंने उद्घोष किया कि जहाँ से जो अच्छा मिले उसे स्वीकार करो। वेदांत को तो ये सार्वभौमिक धर्म मानते थे इसलिए उसकी शिक्षा अनिवार्य रूप से देने पर बल देते थे।

धार्मिक शिक्षा – स्वामी जी धार्मिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। परंतु धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में उनके विचार उदार थे। वे धर्म को किसी संप्रदाय की सीमा में बाँधने के पक्ष में नहीं थे, वे धर्म को मनुष्य जीवन के शाश्वत मूल्यों के उद्घोषक के रूप में स्वीकार करते थे। वे स्वयं अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस की इस बात का प्रचार व प्रसार करते थे कि संसार के सभी धर्म एक हैं, सभी एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।

उपसंहार

स्वामी विवेकानंद इस युग के प्रथम भारतीय हैं जिन्होंने हमें हमारे देश की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और पाश्चात्य देशों की भौतिक श्रेष्ठता से परिचित कराया और हमें अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास के लिए सचेत किया। स्वामी जी ने आधुनिक भारतीय परिस्थितियों का पूर्वाभास पा लिया था और जो समन्वयकारी दृष्टिकोण उन्होंने प्रस्तुत किया, उसमें से बहुत कुछ आज की परिस्थिति में ग्रहणीय है। सचमुच वेदांत और विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता इतनी कभी प्रबल नहीं हुई जितनी कि आज है। स्वामी विवेकानंद के विचार सार्वभौम महत्त्व के हैं। स्वामी जी को केवल हिंदू दार्शनिक कहकर उनके विचारों को संकीर्णन की सीमा में आबद्ध करना उचित नहीं होगा। उन्होंने कहा था – *हम मानव-निर्माण का धर्म चाहते हैं। हम मनुष्य का निर्माण करने वाले सिद्धांत चाहते हैं और हम मानव के सर्वांगीण निर्माण की शिक्षा चाहते हैं।* (ओड, एल.के. 2010. पृ. 226-227)

संदर्भ

आचार्य, पंकज कुमार. 2008. *शिक्षा सिद्धांत एवं आधुनिक भारत में शिक्षा*. पृ. 295-297. सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद.

ओड, एल. के. 2010. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. पृ. 220-227. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर.

गुप्त, लक्ष्मीनारायण और मदनमोहन. 2005. *महान भारतीय शिक्षाशास्त्री*. पृ. 161-178. कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद.

ग्रोवर, इन्द्रा. 2001. *संसार के महान शिक्षाशास्त्री*. पृ. 251-257. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.

त्यागी, जी. एस. डी. और पी.डी. पाठक. 2010. *शिक्षा के सामान्य सिद्धांत*. पृ. 362. विनोद पुस्तक मंदिर, मेरठ.

पाण्डेय, रामशकल. 2008. *शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि*. पृ. 216-228. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.

लाल, रमन बिहारी और सुनीता पलोड़. 2011. *शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग*. पृ. 361-373. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.

माथुर, सावित्री. 2007. *शिक्षा दर्शन*. पृ. 160-162. आस्था प्रकाशन, जयपुर.

रूहेला, एस.पी. 2015. *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार*. पृ. 226-230ः अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा.

शर्मा, आर.ए. 2010. *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार*. पृ. 522-526. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.

शर्मा, मणि. 2005. *समकालीन भारतीय शिक्षा दर्शन*. पृ. 150-152. एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा.

सक्सैना, एन.आर. स्वरूप और के.पी. पाण्डेय. 2003. *शिक्षा दर्शन तथा महान शिक्षाशास्त्री*. पृ. 218-221. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.

सिंह, ओ.पी. 2004. *शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री*. पृ. 177-181. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.

श्रीवास्तव, रोमा और संध्या यादव. 2013. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. पृ. 226-230. अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा.